Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

महाकवि कालिदास के काव्यों में भक्तितत्व

डॉ0 अनिता सेनगुप्ता
समन्वयक, संस्कृत विभाग,
ईश्वर शरण पी0जी0 कॉलेज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

शोध आलेख सार– महाकवि कालिदास संस्कृत जगत के देदीप्यमान नक्षत्र है। उनका कलात्मक वैशिष्ट्य उनकी साहित्यिक निधि है। इसलिए काव्यमर्मज्ञों ने उन्हें कविता–कामिनि का विलास कहा है। दो महाकाव्यों– 'रघुवंश तथा कुमारसंभव, तीन रूपकों – मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा दो खण्डकाव्यों – ऋतुसंहार तथा मेघदूतम् के रूप में विशाल साहित्य के रचयिता महाकवि कालिदास की प्रत्येक रचनाओं में भक्तितत्व की छाया परिलक्षित होती है।

मुख्य शब्द– महाकवि कालिदास, काव्य, भक्तितत्व**,** संस्कृत, धर्म, साहित्यिक, साहित्य।

अनादिकाल से मानवमनीषा दृश्यमान प्रपंच के रहस्यात्मक तथ्यों के मूल को जानने के निमित्त व्यग्र रही है। जानने की इसी व्यग्रता (जिज्ञासा) ने मानव–इतिहास में अनेकानेक आविष्कारों को जन्म दिया है। जब कभी कोई तथ्य मनुष्य की जानकारी की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता, तो मनुष्य सहज ही प्रकृति के उस विस्मयकारी 'वस्तु' के समक्ष श्रद्धावनत हो जाता है और उसे दैवी शक्ति का रूप मानने लगता है। सृष्टिकाल के प्रारम्भ से ही प्रकृति के विभिन्न रूप (अग्नि, वृक्ष, पृथ्वी, सूर्य, सर्प और हाथी आदि) की पूजा के मूल में मनुष्य की यही स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है। इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का ही विकसित रूप श्रद्धा, वेदन, उपासन, ध्यान और भक्ति है। अर्थात् भक्ति का उद्‌गम भी मानव जिज्ञासा और विश्वास की विकासजन्य परिणति का फल है।

महाकवि कालिदास संस्कृत जगत के देदीप्यमान नक्षत्र है। उनका कलात्मक वैशिष्ट्य उनकी साहित्यिक निधि है। इसलिए काव्यमर्मज्ञों ने उन्हें कविता–कामिनि का विलास कहा है।[1] दो महाकाव्यों– 'रघुवंश तथा कुमारसंभव, तीन रूपकों – मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा दो खण्डकाव्यों– ऋतुसंहार तथा मेघदूतम् के रूप में विशाल साहित्य के रचयिता महाकवि कालिदास की प्रत्येक रचनाओं में भक्तितत्व की छाया परिलक्षित होती है।

भक्ति

विनय–भाव या समर्पण वृत्ति से आराधना भक्ति का पर्याय है। कालिदास ने अनेक स्थलों पर भक्ति का उल्लेख किया है। उससे व्यक्तित्व में विशिष्ट प्रकार की विनम्रता आती है।[2]

पद पंक्तियों अथवा चिह्नों का पूजन भी इस श्रेणी में आता है। मेघदूत में शिव के चरण चिह्नों का सिद्धान्त के द्वारा पूजित होना विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है।[3]

पवित्र स्थलों और पवित्र नदियों के सम्पर्क से भी अन्तः करण की पवित्रता आती है।[4] तपस्या[5] के प्रभाव से ही गङ्गावतरण[6] हुआ[7] और अनेक[8] पीढ़ियाँ अपने पाप से मुक्त[9] हो गई।[10] तपस्या की विधेयक क्षमता तो निषेधक भी है।[11] दुर्वासा का शाप भी इस का उदाहरण है, काम का भस्म होना भी यही सिद्ध करता है राजशक्ति के निर्माण एवं संरक्षण में अन्य वर्गों की तुलना में तपस्वियों की तपस्या एक अक्षय सहयोग है।[12] राजा भी प्रतिदिन तप करता हुआ सर्वश्रेष्ठ पद ऋषि को प्राप्त कर सकता है।[13]

पार्वती की समाधि के द्वारा असाधारण पति और असाधारण अखण्ड प्रेम पा सकती है।[14] अभीष्ट फल प्राप्ति का महत्त्वपूर्ण साधन तप और समाधि ही माना गया है। समाधि में चित्त की अविचलता विशेष काम्य है। अतः प्रत्यभूत तत्त्व के समान भी अविकल्प धारणा समाधि का चरमोत्कर्ष सूचित करती है।[15]

श्रेष्ठ उपलब्धि के मूल में समाधि को ही भूत माना गया है।[16] मन को, नव द्वारों की वृत्ति रोक कर, हृदय में स्थिर करके, उसे समाधि द्वारा वशीभूत करना एक आवश्यक प्रक्रिया है।[17] इससे लघिमा, महिमा आदि शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। वे जितना चाहें उतना भारी हो सकते हैं।[18] विशिष्ट आसन में नेत्रों को केन्द्रित करके समाधि में मृगछाल धारण करके साधना का वर्णन पर्वती की तपस्या के प्रसङ्ग में आता है।[19]

प्राणायाम से मन की, शरीर की समस्त वृत्तियों का निरोध इस तरह से हो जाता है मानो तरंगों से रहित कोई गंभीर सरोवर अथवा वायु–रहित स्थिति में स्थिर दीपशिखा।[20]

समाधि की साधना से असाधारण प्रकार के प्रकाश से युक्त दृष्टि का आविर्भाव होता है।[21] पंचम वायु को निरोध करके योग में संस्थित होना इस क्रिया का मुख्य भाग है।[22] इससे कभी–कभी कारण कार्य में विपर्यय हो जाता है।[23] चार उपाय और चार पुरुषार्थ दोनों का स्थान मानव जीवन में बहुत महत्वपूर्ण रूप में रहा है दशरथ के चारों पुत्रों की उपमा चार पुरुषार्थों के रूप में दी गई है।[24]

इनके पारस्परिक महत्त्व की ओर भी दृष्टिपात किया गया है। धर्म को कहीं त्रिवर्ग का सार कहा गया है और उसके प्रति आकर्षण व्यक्त किया गया है।[25]

सन्दर्भ

1 पुराकवीना गणना प्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकतेरभावादनामिकासार्थवती बभून।। – सुभाषित

2 काठिन्यं स्थावरे काये भवता सर्वमर्पितम्।
इदं तु ते भक्तिनम्रं सतामाराधनं वपुः।।कु.सं. 6/73

3 तत्र व्यक्तंदृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः।
शश्वत् सिद्धैरूपचितबलि भक्तिनम्रपरीयाः।

तस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्द्धमुद्धूतपापाः।
सङ्कल्पान्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्धधानाः।।पूर्वमेघ 55

4 हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां।
बन्धुप्रीत्यासमरविमुखो लांगलीयाः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनामन्तः।
शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः।।पूर्व मेघ 49

5 शुचौचतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजांशुचिस्मितामध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत।। कु.सं. 5/20

6 तस्मिन वने संयमिनां मुनीनांतपः समाधे प्रतिकूलवर्ती।
सङ्कल्पयोनेरभिमानभूतमात्ममाधायमधुर्जजृम्भे।। कु.सं. 3/24

7 पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं संनिमतोभयांसम्।
उत्तान पाणिद्वय सन्नि वेशात्प्रफुल्लराजीवमिवांकमध्ये।।कु.स. 3/45

8 वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद्
व्यापरारोधि मदनस्य निषेवितव्यम्।
अत्यन्तमेव सदृशेक्षणबल्लभाभिराहो
निवत्स्यति समंहरिणांगनाभि।। – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथमांके 24

9 तस्माद् गच्छेरनुकनखले शैलराजावतीर्य
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्।।
गौरी वक्रभृकुटिरचना या विहस्येव फेनैः।
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिनन्दुलग्नोर्मिहस्ता।। पूर्व मेघ 50

10 शम प्रधानेषु तपोधनेषु गूढ़ं हि दाहात्मकमस्तितेजः।
स्पर्शानुकूलापि सूर्य कान्ता स्तेजोऽन्यतेजोऽभिभवाद् भवन्तिः। – अभि. शाकुन्तलम्

11 यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्योनृपाणां क्षयितद् धनम्।
तपः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यकाः हि नः। वही 14

12 अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये।
रक्षायोगेयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।
अस्यापि द्यां स्पृशतिवशिनश्चारणं द्वन्द्वगीतः
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः।। वही 15

13 इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपकतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृशः।। कुमारसंभव 5/2

14 कदाचिदासन्न सखी मुखेन सा मनोरथज्ञं पितरं मनस्विनी।
अयाचताव्यनिवासमात्मनः फलोदयन्ताय तपः समाधये।। कुमारसंभव 5/6

15 प्रत्यार्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषाणां गिरिशोंऽनुमेने।
विकारहेतौ सति विक्रयन्ते येषां न चेतांसि तएव धीराः।। कुमार संभव 1/59

16 सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या।
सम्यक् प्रयोगाद् परिक्षतायां नीताविवोत्साह गुणेन संपत्।। कुमार संभव 1/22

17 मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्तिः हृदिव्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
नालक्षयत्साध्वसन्नहस्तः स्त्रस्तं शरं चापमपि स्वहस्तात्।। कुमार संभव 3/50

18 ततो भुजंगाधिपतेः फणाग्रैरधः कथंविदधृत भूमि भागः।
शनैः कृतप्राण विमुक्तिरीशः पर्यङ्कबन्धांनिविडंविभेद।। कुमार संभव 3/59

19 किंचित् प्रकाशस्तिभिरोग्रतारैर्भूविक्रियायां विरतप्रसंगैः।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैर्लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखौः।। कुमार संभव 3/47

20 अवृष्टि संरम्भमिवाम्बु वाहमपामिवाधार मनुत्तरङ्गम्।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधान्निवातनिष्कम्पमिवप्रदीपम्।। कुमार संभव 3/48

21 कपाल नेत्रान्तरलब्धमार्गज्योतिः प्ररोहैरुदितैः शिरस्तः।
मृणालसूत्राधिकसौकुमार्या बालस्य लक्ष्मीं ग्लपयन्तमिन्दोः।। कुमार संभव 3/49

22 अनयत् प्रभुशक्तिसम्पदा दशमेको नृपतीननन्तरान्।
अपरः प्राणिधानयोग्यतां मरुतः पंचशरीरगोचरान्। रघु. 8/19

23 भगवन् प्रागभिप्रेतंसिद्धिः पश्चाददर्शनम्। अतोऽपूर्वखलुवाऽनुग्रहः।
उदेति पूर्व कुसुमं ततः फलंघनौदयः प्राक्तंदनन्तरं पयः।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सम्पदः।। सप्तमोङ्कः अभि. 30

24 सुरगज इव दन्तैर्भग्नदैत्यासिधारैर्नय इवपणवन्ध्यत्यक्तयोगैरुपायैः।
हरिरिवयुगदीर्घैर्दर्भिसंशैस्तदीयैः पतिरवनिपतिनां तैश्चकाशेचतुर्भिः। रघु. 10/86

25 अनेन धर्मः सविशेषमधमे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनी।
त्वया मनोनिर्विषयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते।। कुमार सं. 5/38